2 फरवरी 2008, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

जैन

पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

वर्ष : 30, अंक : 21
फरवरी (प्रथम), 2008

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल**
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**

आजीवन शुल्क : 251 रुपये
वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

जिनागम का मर्म जानने के लिये आगम के आधार के साथ-साथ जागृत विवेक की आवश्यकता भी कदम-कदम पर है।

ह्र परमभाव प्रकाशक, पृष्ठ-82

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न

बदरवास (शिवपुरी-म.प्र.) : यहाँ दिनांक 15 से 21 जनवरी , 08 तक जैन कॉलोनी स्थित नवनिर्मित श्री महावीर दिगम्बर जिनमंदिर के लिये श्री 1008 आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर प्रतिदिन अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, जयपुर के प्रतिदिन ग्रंथाधिराज समयसार पर अध्यात्मरस से सराबोर प्रवचनों का उपस्थित जन समुदाय ने लाभ लिया। दीक्षाकल्याणक के प्रसंग पर आपने **आहारदान** से संबंधित मार्मिक बिन्दुओं पर प्रकाश डाला। आपके अतिरिक्त पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जयपुर एवं पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली के भी प्रवचन हुए।

प्रतिष्ठा के दौरान प्रतिदिन दोनों समय गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचन का लाभ मिला।

महोत्सव में बालक ऋषभकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती एवं श्री गिरनारीलालजी सर्राफ बदरवास को मिला। सौधर्म इन्द्र श्री सतीशचंदजी जैन (ठेकेदार) ग्वालियर एवं कुबेर इन्द्र श्री विनयकुमारजीजैन बदरवास थे।

महोत्सव की सम्पूर्ण प्रतिष्ठाविधि प्रतिष्ठाचार्य बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के कुशल निर्देशन में सहयोगी प्रतिष्ठाचार्य पण्डित मधुकरजी जलगाँव, पण्डित ऋषभजी शास्त्री छिंदवाड़ा, पण्डित मनीषजी शास्त्री पिड़ावा, पण्डित प्रयंकजी शास्त्री रहली एवं पण्डित श्रेयांसजी शास्त्री अभाना ने सम्पन्न कराई।

ज्ञानकल्याणक के दिन दिल्ली से आई विशेष पार्टी द्वारा 'णमोकार मंत्र की महिमा' एवं 'मतलब का संसार' नाटक का मंचन किया गया।

महोत्सव के दौरान सीमंधर संगीत सरिता, छिन्दवाड़ा के अध्यात्मरस गर्भित भक्ति गीतों ने सभी का मन मोह लिया।

सम्पूर्ण कार्यक्रमों में श्री अभयकुमारजी, श्री सुरेशचन्दजी शिवपुरी एवं पण्डित राहुलजी शास्त्री का विशेष सहयोग रहा। साथ ही पण्डित अमितजी लुकवासा एवं पण्डित अंकितजी कोलारस का समागम प्राप्त हुआ।

इस अवसर पर 8700 घण्टों सी.डी.प्रवचन एवं लगभग 52 हजार रुपयों का सत्साहित्य घर-घर पहुँचा।

शिखर कलशारोहण एवं ध्वजारोहण

शिवपुरी (म.प्र.) : यहाँ 14 जनवरी, 08 को शिखर कलशारोहण एवं ध्वजारोहण समारोह अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ।

समारोह में इंजीनियर श्री साकेत जैन पुणे ने शिखर कलश भेंट किया एवं डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने कलश स्थापित किया। इसके साथ ही इंजीनियर श्री नरेन्द्रकुमार आदित्यकुमारजी शिवपुरी ने ध्वज भेंट किया तथा पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल ने इसे चढाया।

समारोह के अवसर पर प्रात: शोभायात्रा एवं पंच परमेष्ठी विधान का आयोजन हुआ। विधि-विधान के समस्त कार्यक्रम पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री, जयपुर ने पण्डित अमितजी शास्त्री, लुकवासा के सहयोग से सम्पन्न कराये।

इस मांगलिक प्रसंग पर दोपहर में महावीर जिनालय में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के 'मैं स्वयं भगवान हूँ' विषय पर हुए प्रवचन का लाभ समाज को मिला।

समारोह के दौरान आधी कीमत पर 30 हजार रुपयों का साहित्य घर-घर पहुँचा। ज्ञातव्य है कि इस समारोह का आयोजन इंजीनियर श्री सुरेशजी जैन शिवपुरी एवं उनके परिवार की ओर से किया गया था।

श्योपुरकलाँ (म.प्र.): यहाँ 13 जनवरी, 08 को ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल एवं जैनदर्शन के मनीषी विद्वान पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल का अभिनन्दन बड़े धूमधाम से उत्साहपूर्वक किया गया।

इस अवसर पर पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल के **इन भावों का फल क्या होगा?** एवं डॉ.भारिल्ल के **अहिंसा** के साथ-साथ **एकता के पाँच सूत्र** विषय पर मार्मिक प्रवचन हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि- जिला कलेक्टर श्री शोभित जैन के प्रश्नों का भी डॉ.साहब ने तार्किक समाधान किया।

सभा के अध्यक्ष श्री कैलाशचंदजी, विशिष्ट अतिथि श्री चौथमलजी, श्री महेन्द्रकुमारजी एवं श्री नवीनजी (मैनेजर-एस.बी.आई.) थे। कार्यक्रम का संचालन श्री कैलाशचंदजी पाराशर एवं श्री विपिन शास्त्री ने किया।

कोलारस (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 14 जनवरी, 08 को रात्रि में समाज के विशेष आग्रह पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल पधारे। आपके **'मैं स्वयं भगवान हूँ'** विषय पर हुये प्रवचन को उपस्थित जन समुदाय ने मन्त्र-मुग्ध होकर सुना। इस अवसर पर स्थानीय विद्वान पण्डित मांगीलालजी, पण्डित किशनमलजी, पण्डित गिरनारीलालजी आदि उपस्थित थे। सभी स्थानीय विद्वानों एवं एडवोकेट चिंतामणिजी ने डॉ. भारिल्ल का अभिनन्दन किया।

सम्पादकीय – कहानी

ऐसे क्या पाप किये ?

ह्न पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

यद्यपि बात पैंतालीस वर्ष पुरानी है; परन्तु ऐसा लगता है मानो कल की ही बात हो। हमारा एक पड़ौसी मित्र था, उसका नाम था लक्ष्मीनन्दन। लक्ष्मीनन्दन पहले कभी वास्तविक लक्ष्मीनन्दन रहा होगा, अभी तो वह लक्ष्मीवन्दन नाम को सार्थक कर रहा था। प्रतिदिन लक्ष्मी की देवी को अगरबत्ती लगाता; दीपक की ज्योति जलाता; पर हाथ कुछ नहीं लगता।

हमारा और उसका घर एक ही मकान के दो हिस्सों में बटा था। दोनों घरों के बीच एक पतली सी टीन की चद्दर का पार्टीसन था। इस कारण हम दोनों एक-दूसरे की किसी भी बात से अनभिज्ञ नहीं रह पाते थे; क्योंकि एक तो पार्टीशन ही ऐसा था जो उनकी या हमारी धीमी से धीमी ध्वनि को रोकने में समर्थ नहीं था। दूसरे, परस्पर एक दूसरे के दिल ऐसे मिल गये थे कि छोटी से छोटी बातें भी हमसे कहे बिना उसे चैन नहीं पड़ती थी। वह प्रतिदिन अपने दिल की और दुःखदर्द की बातें हमसे कहकर अपना जी हल्का कर लिया करता था।

यद्यपि वह स्वभाव से सज्जन था, धर्म के प्रति प्रेम भी था, नास्तिक नहीं था; पर उसे धर्म की समझ बिल्कुल नहीं थी। यद्यपि वह पत्नी आदि को प्रवचन सुनने एवं स्वाध्याय करने में बाधक नहीं बनता; पर स्वयं में प्रवचन सुनने व स्वाध्याय करने की रुचि बिल्कुल नहीं थी। अकेला कमानेवाला था और सात-सात व्यक्तियों के खर्चे का बोझ था उसपर। धंधा भी हाट-बाजारों में जाकर धूप में खड़े रहकर हाथ ठेले पर दुकान लगाकर हल्दी, मिर्च/मसाले और अगरबत्ती आदि जैसी छोटी-मोटी वस्तुएँ बेचने का था। पूँजी के अभाव में बिचारा और करता भी क्या?

जब कोई सहानुभूति में उसकी गरीबी की बात छेड़कर उसकी दुखती नस छू लेता तो उसे शूल सा चुभ जाता था और वह अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु अपने पुराने दिनों को यादकर गर्व से कहने लगता, ''यह तो दिनों का फेर है वर्ना हम भी किसी लखपती से कम नहीं थे।''

उसके कहे अनुसार ह्न वह पहले बहुत सम्पन्न तो था ही, उसकी न केवल अपने गाँव में बल्कि आस-पास के अन्य गाँवों में भी अच्छी प्रतिष्ठा थी। परन्तु जब दुर्दिन आये, पुराना पुण्य क्षीण हुआ, अबतक पुण्य के फल में मस्त रहकर नया कुछ सत्कर्म नहीं किया तो चारों ओर से एक साथ विपत्तियों से तो घिरना ही था, सो घिर गया। जो अबतक सुख के साधन थे, वे ही दुःख दरिद्रता के कारण बन गये।

वह जिस गाँव में रहता था उस गाँव में उसकी खूब खेती थी, सारे गाँव में उसके बाप-दादा के जमाने से साहूकारी फैली थी। सब सुख के साधन सुलभ थे; किन्तु दुर्दिन आते ही वे कर्जदार ही विद्रोही हो गये और नकाब ओढ़कर डाकू बनकर लूटने-पीटने लगे। उन डाकू-लुटेरों के भय से भयाक्रान्त होकर सब कुछ छोड़कर रातोंरात शहर की ओर भागना पड़ा। तभी से उसके दुर्भाग्य का सिलसिला शुरु हो गया था।

एकमात्र जीवन का सहारा २२ वर्षीय बेटा तपेदिक से ग्रस्त हुआ और २४ वर्ष की उम्र में ही दिवंगत हो गया। उस पर एक दुःख का नया पहाड़ और टूट पड़ा। मानसिक तनाव और जरूरत से ज्यादह श्रम के कारण वह स्वयं बीमार रहने लगा, पत्नी भी बीमार और चिड़चिड़ी हो गई। उन दोनों में धार्मिक दृष्टि से परस्पर में वैचारिक मतभेद तो थे ही, एक दूसरे पर दोषारोपण करने से गृह कलह भी होने लगी। उनके मात्र एक बेटा और चार बेटियाँ थीं। बेटे के असमय में दिवंगत होने से वह बहुत निराश हो गया था। बेचारी चारों बेटियाँ इन सब परिस्थितियों के कारण दीन-दुःखी और भीगी बिल्ली की भाँति सहमी-सहमी रहतीं हुई समय बिता रही थीं।

चारों बेटियाँ क्रमशः १८ से २४ वर्ष की उम्र पार कर यौवन की ओर बढ़ रही थीं। लक्ष्मीनन्दन को उनके शादी-ब्याह का विकल्प सताने लगा था। उस समय उसकी समझ में यह नहीं आ सकता था कि 'उनकी चिन्ता की जरूरत उसे नहीं करना चाहिए; क्योंकि उनका भी अपना-अपना भाग्य है। उनके भी पहले यहीं/कहीं उनके वर पैदा हो गये हैं, जो समय आने पर स्वयं माँगकर ले जायेंगे, बाद में हुआ भी यही। लड़कियाँ सुन्दर थीं, सुशील थीं, इस कारण लड़के वालों की ओर से स्वयं शादी के प्रस्ताव आ गये और सुयोग्य वरों द्वारा वे वरण कर ली गईं; परन्तु तत्त्वज्ञान के अभाव में वह तब तक निश्चिन्त नहीं हो सका था जब तक उनके विवाह नहीं हो गये।

अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से घबड़ा कर वह देवी-देवताओं और मंत्र-तंत्रवादियों तथा ज्योतिषियों के चक्कर काटने लगा था। जो जैसा बताता तदनुसार गृहीत मिथ्यात्व के क्रिया-कलाप करने लगा। गरीबी में गीले आटे की कहावत उस पर चरितार्थ हुई। कमाई का बहुभाग देवी-देवताओं, मंत्र-तंत्रवादियों की भेंट पूजा-पत्री में चढ़ने लगा। उसकी गरीबी और बीमारी के कारण सहानुभूति दिखाने और सहयोग करने के बहाने चुस्त-चालाक लोग उन युवा लड़कियों से घंटों गप्पे लड़ाने आ बैठते और अपनी भावनाओं को कलुषित करते रहते। अड़ौसी-पड़ौसी बगलें झाँकते और उन पर हँसते तथा व्यंगबाण छोड़ते।

मैं संयोग से उनका सर्वाधिक निकट का पड़ौसी था और प्रवचनकार पण्डित भी। पड़ौसी का धर्म निभाने के नाते मैं उन्हें मंत्र-तंत्रवादी और उन आवारा लोगों पर लगाम लगाने की बहुत सोचता; परन्तु ''मियाँ बीबी राजी तो क्या करे काजी'' की परिस्थिति में मैं कुछ भी नहीं कर सकता था।

देवयोग से उनकी पत्नी मेरी धर्मसभा की दैनिक श्रोता थी। इस कारण उसे अपने पति की वे अज्ञानजनित मिथ्या क्रिया-कलाप बिल्कुल पसन्द नहीं थे। यदा-कदा दोनों ही अपना-अपना दुःखड़ा रोते मेरे पास आ जाते और लक्ष्मीनन्दन आँखों से आँसू टपकाता हुआ कहता ह्न **'पण्डितजी हमने पूर्वजन्म में ऐसे क्या पाप किए, जिनका यह**

फल हमें मिल रहा है?'

यद्यपि उन्होंने पत्नी को हमारे प्रवचन में आने से कभी नहीं रोका, बल्कि उसकी गैर हाजरी में उसका चाय-नास्ता बनाने का काम भी स्वयं कर लेता और पत्नी को प्रवचन में जाने देता; परन्तु वह स्वयं स्वाध्याय में कभी नहीं आया, इस कारण मेरा मन उसे समझाने का नहीं होता। मैं सोचता इन्हें तत्त्व का कुछ भी अता-पता नहीं है, ऐसे व्यक्ति को मैं क्या समझाऊँ ? एक दिन वे फूट-फूट कर रोने लगे और बोले ह्न **आप दुनिया को समझाते हो। सबको दुख दूर करने का मार्गदर्शन देते हो, और आप स्वयं भी कितने सुखी हो; हमें भी कोई उपाय बताओ।** कोई मंत्र-तंत्र हो, कोई गंडा-ताबीज हो आप जो भी उपाय बताओगे, हम सब करेंगे?

मुझ से भी उनका दुःख देखा नहीं गया, मेरी आँखों में भी आँसू आ गये; पर मेरी समझ नहीं आ रहा था कि घंटे-आध घंटे में उसे क्या बताऊँ? कैसे समझाँऊ ? कोई मंत्र-तंत्र और गंडा-ताबीज विद्या तो मुझे आती भी नहीं थी, बल्कि मैं तो उसे इस पाखण्ड से बचाना चाहता था।

अतः मैंने उससे कहा ह्न **''भैया! तुमने पूर्व जन्म में क्या पाप किए? यह तो मैं नहीं जानता; पर इतना अवश्य जानता हूँ कि आप वर्तमान भी पापपंक में आकण्ठ निमग्न हो। जब तक इस दल-दल से नहीं निकलोगे तब तक दुःख दूर नहीं होगा।''**

वह आँखें फाड़-फाड़ कर मेरी ओर देखने लगा। ''क्या कहा? मैंने अपनी याददाश्त में तो ऐसा कोई पाप नहीं किया।'' ऐसा कहकर वह एक-एक क्रिया कलाप गिनाने लगा।

मैंने कहा ह्न ''यह सच है कि तुमने किसी की हत्या नहीं की, किसी की झूठी गवाही नहीं दी, किसी का कभी एक पैसा भी नहीं चुराया, कभी किसी की माँ-बहिन बेटी को बुरी निगाह से नहीं देखा। कभी किसी का शोषण करके अनावश्यक धन का संग्रह नहीं किया। तुमने पाँचों पापों में एक भी पाप नहीं किया। बीच में ही बात काटकर वह बोला ह्न ''फिर आपने ऐसा कैसे कहा कि मैं पाप की कीचड़ में गले तक डूबा हूँ !''

दिन-रात पाप-पंक में निमग्न लोगों को यह समझाना मेरे लिए भारी पड़ रहा था, कठिन हो रहा है कि मैं उन्हें कैसे बताऊँ कि वे कोई पाप भी कर रहे हैं; किन्तु करनी का फल ही तो जीवन में आता ही है अतः पाप तो उसने किया ही है, अन्यथा उसकी परिस्थिति क्यों बनती? ऐसे व्यक्तियों को यह विचार क्यों नहीं आता कि ''जब संकट के बादल सिर पर मंडरा रहे हैं, चारों ओर से विपत्तियाँ घेरे हैं, तरह-तरह की मुसीबतों में फँसे हैं, नाना प्रकार की बीमारियाँ शरीर में स्थाई निवास बना चुकीं हैं; तो ये सब पुण्य के फल तो हैं नहीं, कोई पाप ही किए होंगे, जिनको हम भूल गये हैं।'' और भगवान से पूछने लगे कि ह्न **हे भगवान! हमने पिछले जन्म में ऐसे क्या पाप किये थे? जिनकी इतनी बड़ी सजा हमें मिल रही है।**

जगत के जीवों की कुछ ऐसी ही मनोवृत्ति है कि वे पाप तो हंस-हंस कर करते हैं और उनका फल भुगतना नहीं चाहते। पुण्य कार्य करते नहीं है और फल पुण्य का चाहते हैं। वस्तुतः जीवों को पुण्य-पाप के परिणामों की पहचान ही नहीं है, पापबन्ध कैसे होता है, पुण्यबंध कैसे होता है, इसका पता ही नहीं है। वे बाहर में होती हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि को ही पाप समझते हैं, **आत्मा में हो रहे खोटे भावों को पाप ही नहीं मानते।** यही सबसे बड़ी भूल हैं, जिसे अज्ञानी नहीं जानता। इसी कारण दुःख के ही बादल मंडराते रहते हैं जब क्षणभर को भी तो शान्ति नहीं मिलती तो भगवान से पूछता है **भगवन्! यह कैसी विडम्बना है?**

लक्ष्मीनन्दन मन ही मन कहता है ह्न ''लोग कहते हैं पुण्य करो, धर्म करो, सुख होगा मैंने जीवन भर अपने कर्त्तव्य का पालन कर पुण्य ही तो किया, पाप बिल्कुल भी नहीं किया, फिर भी......यह सब क्या चक्कर है? इसके सिवा और पुण्य क्या होता है? धर्म क्या होता है? कुछ समझ में नहीं आता। यद्यपि मैं रोज देवी की पूजा करता हूँ, घी के दीपक की ज्योत जलाता हूँ, वर्ष में एक दो बार तीर्थ कर आता हूँ फिर भी कुछ नहीं...। इससे मुझे ऐसा लगता है कि ह्न मैं कहीं भूल में तो हूँ ह्न अन्यथा यह दुःख क्यों?''

वस्तुस्थिति यह है कि अभी जीवों को पाप की भी सही पहचान नहीं है। हत्या, झूँठ, चोरी, पराई माँ-बहिन-बेटी पर कुदृष्टि तो पाप है ही; परन्तु पाप-पुण्य का सम्बन्ध पर द्रव्यों से नहीं; बल्कि अपने परिणामों से होता है; अपने मिथ्या अभिप्राय से होता है, इसकी उसे खबर नहीं हैं।

जगत में कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है, भला-बुरा नहीं है, फिर भी उसे भला-बुरा मानना। तथा इष्ट-अनिष्ट मानकर उसमें राग-द्वेष करना। ऐसे मिथ्या अभिप्राय से दिन-रात आर्तध्यान, रौद्रध्यान रूप पाप परिणामों में डूबे इस व्यक्ति को यह समझ में नहीं आता कि इष्टवियोगज एवं अनिष्ट संयोगज तथा पीड़ा चिन्तन रूप आर्त्तध्यान और पाँचों इन्द्रियों के विषयों में आनन्द मानना उनके संग्रह में सुख होना मानना रौद्रध्यान है और यह भी पाप है। जबकि वास्तविकता यह है कि भले ही जीवन भर इसके द्वारा एक भी प्राणी का घात न हुआ हो, एक भी शब्द असत्य न बोला हो, इसी तरह चोरी, कुशील व बाह्य परिग्रह में किंचित भी प्रवृत्ति न हुई हो परन्तु देवी-देवताओं की उपासना रूप गृहीत मिथ्यात्व के साथ उक्त मिथ्या मान्यता से इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, पीड़ा-चिन्तन रूप आर्तध्यान करता रहे, विषयानन्दी रौद्रध्यान करता रहे तो ये सब पाप ही हैं। इसीतरह अपने परिवार के प्रति प्रीत करता हुआ उसमें आनन्द मनाये, तो ये भी हिंसानंदी और परिग्रहानंदी रौद्रध्यान हैं जो पूर्णतः पाप परिणाम हैं, ये परिणाम ही दुःख के कारण हैं।

पुण्य के उदय में हर्ष मानना, पाप के उदय में खेद खिन्न होना, शरीर की संभाल में लगे रहना, देह की वृद्धि में प्रसन्नता और देह की क्षीणता में अप्रसन्नता! भला इन्हें कौन पाप गिनता है? परन्तु पण्डित बनारसीदास ने इन्हें ही सप्त व्यसन जैसे महापाप में गिनाया है ह्न

(शेष पृष्ठ 5 पर ...)

निबंध प्रतियोगिता

राजस्थान जैन सभा, जयपुर द्वारा के.सी.कटारिया चैरिटेबल ट्रस्ट के सौजन्य से 15 वीं अखिल भारतीय निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। जिसकी विस्तृत जानकारी निम्नप्रकार है ह्न

1. निबंध का विषय ह्न अहिंसा कायरता नहीं है।
2. निबंध में अधिक से अधिक 1500 शब्द होने चाहिये।
3. निबंध अपने हाथ से कागज के एक तरफ लिखा जाये।
4. कक्षा 9 वीं से 12 वीं तक के छात्र-छात्राऐं इसमें भाग ले सकेंगे।
5. जयपुर नगर-निगम सीमा के बाहर के छात्र अपने निबंध सभा कार्यालय राजस्थान जैन सभा, चाकसू का चौक, जौहरी बाजार, जयपुर में दिनांक 29 फरवरी, 2008 से पूर्व भिजवा देवें।
6. जयपुर के बाहर के छात्रों को अपने विद्यालय से अध्ययन का प्रमाण-पत्र निबंध के साथ लगाना आवश्यक है।
7. प्रथम पुरस्कार ह्न 1 प्रत्येक 1000/-रू.
   द्वितीय पुरस्कार ह्न 2 प्रत्येक 500/-रू.
   सांत्वना पुरस्कार ह्न 10 प्रत्येक 200/-रू.
8. निबंध हिन्दी भाषा में लिखा हुआ होना चाहिए।

ह्न संयोजक, जयकुमार गोधा

मंगलार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

तीर्थधाम मंगलायतन, अलीगढ़ में आत्मार्थी छात्रों को आध्यात्मिक एवं लौकिक शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन संचालित है।

यहाँ कक्षा 9 से मात्र उन छात्रों को प्रवेश दिया जायेगा, जिन्होंने अंग्रेजी अथवा हिन्दी माध्यम से कक्षा 8 में न्यूनतम 60 प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं तथा जो शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन में रुचि रखने के साथ ही मंगलायतन एवं विद्यानिकेतन की चर्या और नियमों का पालन कर सकें।

यहाँ अध्ययन करनेवाले छात्रों के आवास, भोजन एवं धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था नि:शुल्क है तथा उन्हें उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा सशुल्क प्रदान की जाती है।

जो छात्र प्रवेश के लिए इच्छुक हों, वे शीघ्र ही कार्यालय में पत्र लिखकर आवेदन-पत्र मंगा लेवें। यहाँ हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में पात्रता परीक्षा के माध्यम से प्रवेश दिया जायेगा व विद्यानिकेतन में प्रवेश हेतु पात्रता-शिविर में आने के लिए आपको पत्र द्वारा सूचित किया जायेगा।

अंग्रेजीव हिन्दीमाध्यम के लिए आवेदन पत्र जमा कराने की अंतिम तिथि क्रमश: 20 फरवरी एवं 30 मार्च हैं। प्रवेश हेतु स्थान सीमित हैं; अत: प्रवेश के इच्छुक छात्र निम्न पते पर सम्पर्क करें।

ह्न भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन
तीर्थधाम मंगलायतन, अलीगढ़-आगरामार्ग,
सासनी-204216 (उ.प्र.)
मो.-09997996346, 09897234019, 09897890893

प्रेरक पत्र

01.डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित 'पश्चाताप' को पढ़कर गाँधीनगर (गुजरात) से डॉ. गोवर्द्धनजी शर्मा लिखते हैं कि ह्न 'आपके द्वारा लिखित पश्चाताप नामक पुस्तक पढ़कर धन्यता का अनुभव हुआ। एक कुशल शोधार्थी, जैनधर्म के अध्येता, समीक्षक, अनुवादक एवं लेखक के रूप में तो आपको मैं भी जानता था; परन्तु पश्चाताप ने आपके सर्जक का सर्वथा नूतन स्वरूप उद्घाटित किया है। आपके कवि हृदय ने बौद्धिक चिन्तन सर्जन से मिलकर एक नवीन विश्व का निर्माण किया है; तदर्थ हार्दिक अभिनन्दन।

आपने सी.डी. भी तैयार करवाई है ह्न यह भी मेरे लिये एक बड़ी उपलब्धि है। आज के आपाधापी के युग में साहित्य पढ़ने की रुचि कम होने पर सी.डी. सुनकर श्रोताओं में रुचि जागृत हो और वे सत्साहित्य का अध्ययन करने के प्रति जागृत हों ह्न ऐसी भावना है।'

02.पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल द्वारा जैन पथ प्रदर्शक के सम्पादकीय के रूप में लिखित लेखों को पढ़कर जोगेश्वरी (मुम्बई) से मांगीलालजी जैन लिखते हैं कि ह्न 'आपके द्वारा लिखित सम्पादकीय लेख शिक्षाप्रद होने के साथ ही सांसारिक विषय-कषायों की ओर बढ़ते कदमों के लिए गति अवरोधक (स्पीड ब्रेकर) के समान हैं।

आपके द्वारा लिखित विदाई की बेला, संस्कार, ये तो सोचा ही नहीं, इन भावों का फल क्या होगा इत्यादि शास्त्र पढ़कर लगा कि गृहस्थ भी सम्यक्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।'

03. **बुरहानपुर** से श्री सुन्दरलाल प्रहलाद चौधरी लिखते हैं कि ह्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया द्वारा बालकों के लिये लिखित पुस्तकें बहुत ही अनूठी, दिव्य, बेजोड़, संग्रहलायक, सराहनीय, प्रेरणादायी, अध्यात्म से परिपूर्ण, गागर में सागर है। इन कृतियों में बालकों को सार्थक सद्ज्ञान की एक नई दिशा मिलेगी।

कार्यकारिणी गठन एवं शपथ ग्रहण

उदयपुर (राज.) : दिनांक 6 जनवरी 2008 को अखिल भरतीय जैन युवा फैडरेशन शाखा आदर्श नगर, गायरियावास की नवीन कार्यकारिणी का गठन राजस्थान प्रदेश प्रभारी जिनेन्द्र शास्त्री, डॉ.महावीर प्रसाद जैन एवं पण्डित खेमचंद जैन के निर्देशन में किया गया।

सर्वसम्मति से गठित नवीन कार्यकारिणी निम्नानुसार है ह्न

संरक्षक ह्न दीपचंद गाँधी एवं डॉ. फतहलाल कोठारी, **अध्यक्ष** ह्न किशनलाल सेठ, **उपाध्यक्ष** ह्न पूर्णेश कोठारी, **कोषाध्यक्ष** ह्न नन्दलाल सेठ, **मंत्री** ह्न अशोक दोषी, **प्रचार मंत्री** ह्न लोकेश जैन, **सांस्कृतिक मंत्री** ह्न कल्पेश जैन, **सह-सांस्कृतिक मंत्री** ह्न श्रीमती दीपिका जैन, **पाठशाला संचालक** ह्न पण्डित हेमन्त जैन शास्त्री।

दिनांक 22 जनवरी, 08 को श्री दिगम्बर जैन मंदिर में शपथ ग्रहण समारोह आयोजित किया गया। जिसमें सभी पदाधिकारियों को जिनवाणी माँ की साक्षी में शपथ दिलाई गई।

(पृष्ठ 3 का शेष ...)

अशुभ में हार शुभ में जीत यही है द्यूतकर्म,
देह की मगनताई यहै माँस भखिबो।
मोह की गहल सों अजान यहैं सुरापान,
कुमति की रीति गणिका को रस चखिबो।।
निर्दय ह्वै प्राण घात करबो यहै शिकार,
पर-नारि संग पर-बुद्धि को परखिबो।
प्यार सौं पराई सौंज गहिबे की चाह चोरी,
ऐ ही सातों व्यसन विडारि ब्रह्म लखिबो।।

जो मिथ्या मान्यता के कारण अशुभ उदय आने पर प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी हार मानता है तथा शुभोदय में अनुकूल स्थिति में अपनी जीत मानता है; वह एक तरह से जुआरी ही है; जो हर्ष-विषाद रूप परिणाम जुआ की जीत-हार में होते हैं, वैसे ही हर्ष-विषाद के परिणाम जिसने पुण्य-पाप के उदय में किए तो फल तो परिणामों का ही मिलता है न? इस कारण जुआ में हर्ष-विषाद और पुण्य-पाप के उदय से हुए हर्ष-विषाद में कोई अन्तर नहीं है। इसी तरह मांसल देह में एकत्व व ममत्वबुद्धि से एवं सुख की मान्यता से उसमें मग्न होना भी माँस खाने जैसा व्यसन ही है।

शराब पीकर मूर्च्छित हुआ या मोह में मूर्च्छित ह्व दोनों में कोई अन्तर नहीं है, मूर्च्छा तो दोनों में हुई न! अतः मोही जीव का मोह भी एक प्रकार से शराब पीने जैसा व्यसन ही है।

ये कुबुद्धि या व्यभिचारणी बुद्धि वैश्या व्यसन जैसा है। निर्दय होकर किसी भी प्राणी की हिंसा में प्रवृत्ति शिकार व्यसन है तथा दूसरों की बुद्धि की परख करने को परस्त्री सेवन व्यसन कहा है। दूसरों की वस्तु रागवश ग्रहण करना चोरी व्यसन है। कवि का कहना है कि इन सात व्यसनों में सुख की मान्यता के त्यागपूर्वक आत्मा को जाना/पहचाना जा सकता है।

इसी प्रकार पुत्र-पुत्रियों से प्रीति करना, उनमें ममत्व रखना, उनके वियोग में दुःखी होना, देह में एकत्व रखना उसके ही संभालने में रत रहना, शरीर में रोगादि होने पर दुःखी होना, शारीरिक पीड़ा होने पर व्याकुल हो उठना इसमें भी पाप है, ऐसा बहुत ही कम लोग जानते हैं, जबकि ये आर्तध्यान रूप पाप परिणाम है। पंचेन्द्रिय के भोगों में सुख बुद्धि होना, उन्हें जुटाने की कामना में लगे रहना भी कोई पाप है, यह बात भी लोगों की समझ के बाहर ही है। अन्यथा हिंसादिक की तरह इसे क्यों नहीं छोड़ देते? तथा आत्मा में रागादिक की उत्पत्ति ही हिंसा है, इस हिंसारूप पाप परिणामों की पहचान हमें नहीं है, बस ये ही कुछ ऐसे कारण हैं कि जिनके कारण हम दिन-रात पाप करते हुए भी स्वयं को पापी नहीं मान पाते और जब इन पापों का परिणाम (फल) जीवन में आता है तब आश्चर्य होता है कि **''अरे ! मैंने ऐसे क्या पाप किए?''**

आश्चर्य इसका नहीं होना चाहिये कि कौन से पाप किये, बल्कि आश्चर्य तो यह है कि मिथ्यामान्यतावश दिन-रात पाप भाव में रहते हुए ऐसा महान पुण्य कब बाँध लिया, जिससे यह मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल, जिनधर्म की शरण और धर्म के अनुकूल वातावरण प्राप्त कर लिया? यह अनुकूलता निश्चय ही कोई महान् पुण्य का फल है, यह मौका अनन्त/असंख्य प्राणियों में किसी एकाध को ही मिलता है जिसे हम प्राप्त करके प्रमाद में खो रहे हैं। यदि यह अवसर चूक गये तो ...

यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवो जिनवाणी।
इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी।।

एक दिन मौका पाकर मैंने उसे यह सब समझने के लिए प्रेरित किया और प्रवचन में पहुँचने की सलाह दी तो सौभाग्य से उसने मेरी बात मान ली और प्रवचन में आना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे उसे भी रुचि लग गई। एक दिन प्रवचन में निकला ह्व

''यह एक नियम है कि ध्यान के बिना कोई भी संसारी जीव नहीं है। कोई न कोई ध्यान प्रत्येक प्राणी में पाया जाता है। यदि व्यक्ति का अभिप्राय, मान्यता सही नहीं है तो उसे आर्त-रौद्रध्यान ही होते हैं, क्योंकि धर्मध्यान तो मिथ्या मान्यता में होता ही नहीं है। धर्मध्यान तो सम्यक्दृष्टि जीवों के ही होता है। सामान्य जीवों के मिथ्यात्व की भूमिका में तो निरन्तर आर्त व रौद्रध्यान ही होते हैं इनमें रौद्रध्यान जो कि पापों में आनंद मानने रूप होता है, सदा अशुभ या पाप रूप ही होता है। आर्तध्यान दुःख शोक रूप होता है, इसमें शुभ-अशुभ का भेद पड़ता है इसमें अज्ञानियों के तो अधिकतर पाप रूप परिणाम ही रहते हैं, अतः भले ही प्रगट रूप में पाप न किये हों फिर भी अभिप्राय (मान्यता) में तो निरन्तर पाप रूप ही परिणाम रहते हैं, उन्हीं में कर्मों की स्थिति व अनुभाग (फल देने की शक्ति) अधिक पड़ती है। तदनुसार जीवन में दुःख आना स्वाभाविक ही है। करणानुयोग शास्त्रानुसार जितना बीच-बीच में शुभभाव होता है उतनी राहत तो असाध्य रोगों व दुःखों के बीच में भी मिल ही जाती है, पर उस सागर जैसे दुःख में इस बूँद जैसे सांसारिक सुख का क्या मूल्य? इससे किसी प्रकार भी संसार के दुःख से छुटकारा नहीं मिल सकता। ऐसी स्थिति में इस जीव को सुखी होना हो तो पुण्य पाप परिणामों की पहचान के लिए जिनवाणी का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। पण्डित भागचन्दजी ठीक कहते है ह्व

अपने परिणामनि की संभाल में, तातें गाफिल मत हो प्राणी।

यहाँ 'गाफिल' शब्द के दो अर्थ हैं एक तो सीधा-सादा यह कि परिणामों की संभाल में सावधान रहो, अपने शुभाशुभ परिणामों को पहचानों और अशुभ भावों से बचो। दूसरा अर्थ है कि शुभाशुभ परिणामों में ही गाफिल (मग्न) मत रहो, अपने परिणामी द्रव्य को पहचानों तभी परिणाम हमारे स्वभाव सन्मुख होंगे।''

यह प्रवचन सुनते ही लक्ष्मीनन्दन को उसके प्रश्न का उत्तर तो मिल ही गया। साथ ही सन्मार्ग में अग्रसर होने की रुचि भी जागृत हो गई और वह पत्नी के साथ प्रतिदिन प्रवचन सुनने आने लगा। ॐ नमः। ●

तत्वचर्चा

छहढाला का सार

21

- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

यद्यपि ३ गुप्तियाँ २८ मूलगुणों में नहीं हैं; तथापि वे १३ प्रकार के चारित्र में सामिल हैं। ५ महाव्रत, ५ समिति और ३ गुप्ति ह्न यह १३ प्रकार सकल चारित्र कहा गया है। चूँकि यहाँ सकल चारित्र का वर्णन चल रहा है; अत: गुप्तियों की चर्चा भी न्यायोपात्त है।

यही कारण है कि दौलतरामजी ५ महाव्रतों और ५ समितियों की चर्चा करने के उपरान्त ३ गुप्तियों की चर्चा करते हैं; जो इसप्रकार है ह्न

सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय, आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावते।।

जब वे मुनिराज मन, वचन और काय का भलीभाँति निरोध करके अपने आत्मा का ध्यान करते हैं, तब वे आत्मा में ऐसे निमग्न हो जाते हैं कि पत्थर की मूर्ति के समान स्थिर मुद्रा को देखकर, उनकी देह को पत्थर समझ कर हिरण अथवा जंगली पशु अपनी खाज खुजाने लगते हैं।

आत्मध्यान के काल में वाणी से तो कुछ बोलना होता हीं नहीं है, उन्हें बोलने का विकल्प भी नहीं रहता है; काया भी ऐसी स्थिर हो जाती है कि मानो पत्थर की मूर्ति ही विराजमान हो और मन भी पूर्णत: अन्तरमुखी हो जाता है, मन के निमित्त से आत्मा में उठनेवाली विकल्प-तरंगे शान्त हो जाती हैं। उनकी इस स्थिति को मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति कहते हैं।

चौथे छन्द की अन्तिम दो पंक्तियाँ पंचेन्द्रिय विजय के सन्दर्भ में हैं; जो इसप्रकार हैं ह्न

रस रूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय जयन पद पावने।।

सकल चारित्र के धनी मुनिराज पंचेन्द्रियों के विषय ह्न स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द ह्न यदि सुहावने हों तो उनमें राग नहीं करते और असुहावने हों तो द्वेष नहीं करते; इसलिये वे मुनिराज पंचेन्द्रिय विजयी हैं।

क्या कोई मुनिराज ऐसा कह सकते हैं कि यह स्थान कितना रमणीक है, देखकर तबियत प्रसन्न हो गई। कैसी सुगन्धित पवन मन्द-मन्द चल रही है, मौसम कितना अच्छा है, न अधिक सर्दी और न अधिक गर्मी। कहते हैं यहाँ बारहों महिने ऐसा ही मौसम रहता है, न कोई शोर-गुल, न किसी प्रकार का प्रदूषण। लगता है शेष जीवन यहीं बिताया जाय।

नहीं, कदापि नहीं; क्योंकि मुनिराज पाँच इन्द्रियों को जीतनेवाले होते हैं और उक्त वाक्यावली में पंचेन्द्रिय विषयों के प्रति अनन्य लालसा व्यक्त हो रही है।

अब मुनिराजों को प्रतिदिन करने योग्य ६ आवश्यक और शेष ७ गुणों की चर्चा करते हैं ह्न

प्रतिदिन प्रात:, दोपहर और शाम को छह-छह घड़ी (२ घंटे और १२ मिनिट) मन से सामायिक करना, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की वचन से स्तुति करना और काया से जिनेन्द्र की वंदना करना, सर्वज्ञकथित आगम का स्वाध्याय करना, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग करना ह्न ये छह मुनिराजों के आवश्यक हैं, उनके लिये अवश्य करने योग्य कार्य हैं। ये उनके अवश कार्य हैं। तात्पर्य यह है कि वे इन्हें स्वाधीन होकर करते हैं, किसी के वश होकर नहीं।

स्नान का त्याग, दन्तधोवन का त्याग, वस्त्र का त्याग, भूमिशयन अर्थात् जमीन पर सोना, दिन में एक बार आहार लेना, खड़े-खड़े हाथ में आहार लेना और केशलोंच करना ह्न ये सात मुनिराजों के शेष गुण हैं।

इनकी चर्चा छहढाला की छठवीं ढाल में इसप्रकार की गई है ह्न

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वंदना जिनदेव को।
नित करैं श्रुति-रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को।।
जिनके न न्हौंन न दंतधोवन, लेश अंबर आवरन।
भू माहिं पिछली रयनि में, कछु शयन एकाशन करन।।
इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज-पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज-ध्यान में।।

वे मुनिराज प्रतिदिन समतापूर्वक सामायिक करते हैं, स्तुति बोलते हैं, जिनदेव की वंदना करते हैं, उनका प्रेम निरन्तर स्वाध्याय में रहता है, प्रतिक्रमण करते हैं और शरीर के प्रति ममत्वभाव को छोड़ते हैं अर्थात् कायोत्सर्ग करते हैं।

ये छह मुनिराजों के प्रतिदिन करने योग्य आवश्यक कार्य हैं।

उन मुनिराजों के न स्नान है और न दन्तधोवन है। तात्पर्य यह है कि न तो वे नहाते हैं और न दातुन (मंजन) करते हैं। उनके शरीर पर रंचमात्र भी वस्त्र का आवरण नहीं होता अर्थात् वे पूर्णत: नग्न रहते हैं।

वे पिछली रात में, भूमि पर एक आसन से थोड़ा-बहुत सोते हैं। रात में तो भोजन का प्रश्न ही नहीं है, दिन में भी एक बार खड़े-खड़े, थाली में नहीं, अपने हाथों में अल्पाहार करते हैं। वे २२ परिषहों से डरते नहीं हैं और अपने हाथों से केशों का लुंचन करते हैं और अपने आत्मा के ध्यान में लगे रहते हैं।

मुनिराजों के उक्त २८ मूलगुणों में से दो मूलगुण तो आहार से ही संबंधित हैं। उनके संबंध में मेरी एक अन्य कृति '**पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव**' का निम्नांकित कथन ध्यान देने योग्य है ह्न

मुनिराजों के २८ मूलगुणों में दो मूलगुण आहार से ही संबंधित हैं ह्न
१) दिन में एक बार अल्प आहार लेना और
२) खड़े-खड़े हाथ में आहार लेना।

जैसा कि छहढाला की निम्नांकित पंक्ति में कहा गया है ह्न

इकबार दिन में लें आहार खड़े अलप निजपान में।

मुनिराज दिन में एक बार ही आहार लेते हैं, वह भी भरपेट नहीं, अल्पाहार ही लेते हैं और वह भी खड़े-खड़े अपने हाथ में ही।

ऐसा क्यों है, खड़े-खड़े ही क्यों ? बैठकर शान्ति से दो रोटियाँ खा लेने में क्या हानि है ? हाथ में ही क्यों, थाली में जीमने में भी क्या दिक्कत

है ? इसीप्रकार एक बार ही क्यों, बार-बार क्यों नहीं, अल्पाहार ही क्यों, भरपेट क्यों नहीं ?

यह कुछ प्रश्न हैं, जो लोगों के हृदय में उत्पन्न होते हैं।

वनवासी मुनिराज नगरवासी गृहस्थों की संगति से जितने अधिक बचे रहेंगे, उतनी ही अधिक आत्मसाधना कर सकेंगे। इसीकारण वे नगरवास का त्याग करते हैं, वन में रहते हैं, मनुष्यों की संगति की अपेक्षा वनवासी पशु-पक्षियों की संगति उन्हें कम खतरनाक लगती है; क्योंकि पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े भले ही थोड़ी-बहुत शारीरिक पीड़ा पहुँचावें, पर वे व्यर्थ की चर्चाएँ कर उपयोग को खराब नहीं करते। गृहस्थ मनुष्य तो व्यर्थ की लौकिक चर्चाओं से उनके उपयोग को भ्रष्ट करते हैं। जिस राग-द्वेष से बचने के लिये वे साधु हुये हैं, उन्हें ये गृहस्थ येनकेनप्रकारेण उन्हीं राग-द्वेषों में उलझा देते हैं। तीर्थों के उद्धार के नाम पर उनसे चन्दे की अपील करावेंगे, पंच-पंचायतों में उलझावेंगे, उनके सहारे अपनी राजनीति चलायेंगे, उन्हें भी किसी न किसी रूप में अपनी राजनीति में समायोजित कर लेंगे।

इन गृहस्थों से बचने के लिये ही वे वनवासी होते हैं; पर आहार एक ऐसी आवश्यकता है कि जिसके कारण उन्हें इन गृहस्थों के सम्पर्क में आना ही पड़ता है। अत: सावधानी के लिए उक्त नियम रखे गये हैं। एक तो यह कि जब आहार के विकल्प से नगर में आते हैं तो मौन लेकर आते हैं, दूसरे खड़े-खड़े ही आहार करते हैं; क्योंकि गृहस्थों के घर में बैठना उचित प्रतीत नहीं होता। गृहस्थों का सम्पर्क तो जितना कम हो, उतना ही अच्छा है। दूसरों से कटने का मौन सबसे सशक्त साधन है; वे उसे ही अपनाते हैं।

दूसरे, इन्हें इतनी फुर्सत कहाँ है कि बैठकर शान्ति से खावें। उन्हें तो शुद्ध सात्विक आहार से अपने पेट का खड्ढा भरना है, वह भी आधा-अधूरा। शान्ति से बैठकर धीरे-धीरे भरपेट खाने में समय बर्बाद करना इष्ट नहीं है। जब हम किसी काम की जल्दी में होते हैं तो कहाँ ध्यान रहता है स्वाद का ? उन्हें भी गृहस्थ के घर से भागने की जल्दी है, सामायिक में बैठने की जल्दी है; आत्मसाधना करने की जल्दी है।

बच्चों का मन भी जब खेल में होता है तो वे भी कहाँ शान्ति से बैठकर खाते हैं। माँ के अति अनुरोध पर खड़े-खड़े थोड़ा-बहुत खाकर खेलने भागते हैं। मन तो खेल में है, उन्हें खाने की फुर्सत नहीं।

उसीप्रकार हमारे मुनिराजों का मन तो आत्मध्यान में है, उन्हें शान्ति से बैठकर खाने की फुर्सत कहाँ है ?

इसीप्रकार भरपेट खाने के बाद आलस का आना स्वाभाविक ही है। अत: जिन मुनिराजों को आहार से लौटने पर ६ घड़ी तक सामायिक करनी है, उन्हें प्रमाद बढ़ानेवाला भरपेट भोजन कैसे सुहा सकता है ?

जब छात्रों की परीक्षाएँ होती हैं, इसकारण उन्हें देर रात तक पढ़ना होता है तो वे भी शाम का भोजन अल्प ही लेते हैं। इसकारण मुनिराजों का आहार अल्पाहार ही होता है। वे तो मात्र जीने के लिए शुद्ध-सात्विक अल्प आहार लेते हैं। वे आहार के लिये नहीं जीते, जीने के लिये आहार लेते हैं। भरपेट आहार कर लेने पर पानी भी पूरा नहीं पिया जायेगा और बाद में प्यास लगेगी। वे तो भोजन के समय ही पानी लेते हैं, बाद में तो पानी भी नहीं पीते। पानी की कमी के कारण भोजन भी ठीक से नहीं पचेगा और कब्ज आदि अनेक रोग आ घेरेंगे। ऐसी स्थिति में आत्मसाधना में भी बाधा पड़ेगी। अत: वे अल्पाहार ही लेते हैं।

हाथ में आहार लेने के पीछे भी रहस्य है। यदि थाली में आहार लेवें तो फिर बैठकर ही लेना होगा, खड़े-खड़े आहार थाली में संभव नहीं है। दूसरे थाली में उनकी इच्छा के विरुद्ध भी अधिक या अनपेक्षित सामग्री रखी जा सकती है। जूठा छोड़ना उचित न होने से खाने में अधिक आ सकता है। हाथ में यह संभव नहीं है। यदि किसी ने कदाचित् रख भी दिया तो कितना रखेगा ? बस एक ग्रास ही न ? पर थाली में तो चाहे जितना रखा जा सकता है।

भोजन में जो स्वाधीनता हाथ में खाने में है, वह स्वाधीनता थाली में खाने में नहीं रहती।

एक बात यह भी है कि उसमें भक्तगण अपने वैभव को प्रदर्शित किये बिना नहीं रहते। यदि महाराज थाली में खाने लगें तो कोई चाँदी की थाली में खिलायेगा, कोई सोने की थाली में।

दिगम्बर वीतरागी भगवान को भी हम सोने-चाँदी, हीरे-जवाहरात से सजाने लगे हैं। यदि दिगम्बर लोग उनके तन पर कोई गहना-कपड़ा नहीं सजा सकते तो वे उनके परिकर को सजावेंगे। छत्र-चँवरों के माध्यम से उन्हें जगमगा देंगे। जिन्हें तुच्छ जानकर वे त्याग कर आये हैं, उन्हीं को उनके चारों ओर सजावेंगे।

रागियों की प्रवृत्तियाँ रागमय ही होती हैं, वैरागी और वीतरागी मुनिराजों को वे वृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ कैसे सुहा सकती हैं ? यह रहस्य है उनके करपात्री होने का।

यह तो आप जानते ही हैं कि मुनिराज जब आहार लेकर वापिस लौटते हैं तो उन्हें आचार्यश्री के समक्ष उपस्थित होकर चर्या के काल में मन-वचन-काय की क्रिया में कुछ दोष लग गया हो, तो वह सब भी बताकर प्रायश्चित लेना होता है।

भोजन की चर्या के बाद ही यह सब क्यों ?

इसलिए कि आहार के काल में गृहस्थों के समागम की अनिवार्यता है और उनके समागम में दोष होने की संभावना भी अधिक रहती है।

इसी बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि गृहस्थों का समागम साधुओं के लिये कितना खतरनाक है ? इसी की विशुद्धि के लिये यह नियम रखा गया है कि आहारचर्या के बाद साधु आचार्यश्री के पास जाकर सब-कुछ निवेदन करें और उनके आदेशानुसार प्रायश्चित करें।

इस बात को ध्यान में रखकर वीतरागी साधुओं को गृहस्थों के समागम से बचने का पूरा-पूरा यत्न करना चाहिये। गृहस्थों का भी यह कर्तव्य है कि वे भी मुनिराजों को जगत के प्रपंचों में न उलझावें। यदि उनका सत्समागम मिल जाता है तो उनसे वीतरागी चर्चा ही करना चाहिये, तत्त्वज्ञान समझने का ही प्रयास करना चाहिये। **(क्रमश:)**

देवलाली में विशेष शिविरों का आयोजन

पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट अत्यंत हर्ष के साथ निवेदन कर रहा है कि गत वर्षानुसार इस वर्ष भी देवलाली में विशेष शिविरों का आयोजन किया जा रहा है।

इन शिविरों की खास विशेषता यह है कि एक ही वक्ता लगातार 5 दिन प्रतिदिन 6 घंटे एक ही विषय लेंगे।

प्रथम 'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका शिविर' डॉ. उज्ज्वला शहा के माध्यम से दिनांक 26 मार्च 08 से 30 मार्च 08 तक आयोजित होगा तथा **द्वितीय 'जैन सिद्धान्त शिविर'** पण्डित दिनेशभाई शहा द्वारा दिनांक 24 मई 08 से 28 मई 08 तक आयोजित होगा।

इन दोनों ही शिविरों में आवास एवं भोजन की व्यवस्था न्यूनतम शुल्क के साथ रखी गई है। सभी साधर्मियों को दोनों ही शिविरों का लाभ लेने के लिए सादर हार्दिक आमंत्रण है। आपके आगमन की पूर्व सूचना निम्न पते पर देवें।

ह्न पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट
कहान नगर, बेलतगाँव रास्ता, लाम रोड़, देवलाली,
जिला–नासिक (महाराष्ट्र) फोन–0253–2491044

वैराग्य समाचार

1. **लूणदा (उदयपुर) निवासी** श्री चांदमलजी ललितकुमारजी किकावत की मातुश्री श्रीमती शोभागबेन ध.प. श्री गोरीलालजी किकावत का मंगलवार, दिनांक 29 जनवरी, 08 को प्रात: 6.30 बजे 82 वर्ष की आयु में शांत परिणामों से देहावसान हो गया। आप धार्मिक एवं स्वाध्यायी महिला थीं। ज्ञातव्य है कि आपका सुपौत्र अंकित जैन वर्तमान में टोडरमल महाविद्यालय में अध्ययनरत है।

2. **टीकमगढ़ (म.प्र.) निवासी** श्री हुकमचंदजी वैशाखिया (चूना व्यवसायी) 24 जनवरी, 08 को आकस्मिक निधन हो गया है। आप समन्वय–वाणी के सम्पादक श्री अखिल बंसल जयपुर के श्वसुर थे।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करें ह्न यही मंगल भावना है।

स्लिपडिस्क रोगी ध्यान दें !
सम्पूर्ण उपचार बिना दवा, बिना कसरत, बिना चीरफाड, बिना आराम किए विश्व की नवीनतम तकनीक माइक्रो एक्यूप्रेशर द्वारा शीघ्र उपचार।
डॉ. पीयूष त्रिवेदी (मो.) 09828011871
गोल्ड मेडलिस्ट, बी.ए. एम.एस., एम.डी. (एक्यू.)
डिप्लोमा इन योगा, सुजोक (मास्को) एफ.ए.आर.सी. एस. (लंदन)
मेडिनोवा पोली क्लीनिक, केसरगढ, जे.एल.एन. मार्ग, जयपुर
समय : सायं 6 बजे से 9 बजे तक, रविवार को प्रात: 8 से 12 बजे तक
नोट–एक्यूप्रेशर सेवा समिति द्वारा 300 से अधिक नि:शुल्क शिविर आयोजित।
अन्य रोग : जोडों का दर्द, गर्दन का दर्द, मोटापा, मायोपैथी, मानस विकृतियां, मधुमेह तथा उच्च रक्तचाप आदि की सफल चिकित्सा।

हार्दिक शुभकामनायें !

श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक विद्वान डॉ. सुमत जैन की श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) में नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ प्राकृत स्टडी एण्ड रिसर्च में रिसर्च एसोसिएट के रूप में प्राकृतभाषा एवं जैनविद्या के लैक्चरर पद पर नियुक्ति हुई है।

यहाँ राष्ट्रीय प्राकृत संस्थान का प्रारूप तैयार हो चुका है, जिसका साकार रूप कुछ समय पश्चात ज्ञात हो जायेगा।

हाल ही में आपको 'पण्डित तेजपालजी कृत अपभ्रंश पाण्डुलिपि वरांगचरिउ का पाठ सम्पादन एवं अध्ययन' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई है। आपको यह उपाधि 4 नवम्बर,07 को उदयपुर में आयोजित दीक्षान्त समारोह में पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे.अब्दुल कलाम के सान्निध्य में प्राप्त हुई।

ज्ञातव्य है कि इससे पूर्व आपको यू.जी.सी. दिल्ली से जूनियर रिसर्च फैलोशिप (जे.आर.एफ.) प्राप्त हो रही थी।

जैन पथप्रदर्शक एवं टोडरमल महाविद्यालय परिवार की ओर से आपके उज्ज्वल भविष्य हेतु हार्दिक शुभकामनायें।

गोष्ठी सम्पन्न

जयपुर : श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में आयोजित साप्ताहिक गोष्ठियों की शृंखला में दिनांक 16 जनवरी,08 को **गुणस्थान : एक अनुशीलन** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता पण्डित संजीवकुमारजी गोधा ने की।

श्रेष्ठ वक्ताओं के रूप में सुधीर जैन, तपिश जैन एवं संदीप चौगुले को चुना गया। गोष्ठी का संचालन कु.परिणति पाटील एवं मंगलाचरण अंकित जैन ने किया।

ह्न संयोजक, विवेक जैन

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**, डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए–४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें –
ए– ४ बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५ (राज.)
फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८
फैक्स : (०१४१) २७०४१२७